

## तुलसी के काव्य में समन्वयवाद

हिन्दी साहित्य में 'भक्तिकाल' को 'स्वर्णयुग' के नाम से जाना जाता है। जिसमें प्रमुख योगदान लोकनायक एवं महान् कवि गोस्वामी तुलसीदास को जाता है। अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि उनका जन्म श्रावण शुक्ला सप्तमी वि.सं. 1554 को उ.प्र. के राजापुर गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम आत्माराम व माता का नाम हुलसी था। इनके गुरु नरहरिदास ने आरंभ से ही इनमें राम-भक्ति के बीज बो दिये थे। उनकी विश्व प्रसिद्ध रचना- 'रामचरित मानस' आज भी भारतीय आध्यात्मिक चेतना का प्रमुख स्रोत है। इसके अतिरिक्त उनकी अन्य प्रसिद्ध रचनाएँ हैं- विनय पत्रिका, कवितावली, कृष्ण गीतावली, गीतावली, दोहावली, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, बरवैरामायण, रामलला नहछू, रामाज्ञा प्रश्नावली, वैराग्य संदीपनी आदि। गोस्वामी तुलसीदास ने तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन कर उसी के अनुरूप अपने युग की रूपरेखा प्रस्तुत की। उन्होंने अपने काव्य में राम जैसे आदर्श चरित्र के भीतर अपनी अलौकिक प्रतिभा एवं काव्य शास्त्रीय निपुणता के बल पर भक्ति का प्रकृत आधार खड़ा किया तथा उसमें मानव जीवन के पारिवारिक,

सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि सभी दशाओं के चित्रों और चरित्रों का विधान किया । उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से सामाजिक विषमता और वैमनस्य को कम करने का प्रयत्न किया । विभिन्न मत-मतान्तरों में समन्वय का प्रयास किया । इसी कारण आलोचक उन्हें 'समन्वयवादी भक्त कवि' के रूप में सम्बोधित करते हैं।

डॉक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, “तुलसीदास को जो अभूतपूर्व सफलता मिली, उसका कारण यह था कि वे समन्वय की विराट् चेष्टा है । उनके काव्य में ज्ञान और भक्ति, सगुण और निर्गुण, गार्हस्थ्य और वैराग्य, शैव और वैष्णव, राजा और प्रजा, शील और सौन्दर्य आदि के समन्वय की भावपूर्ण झाँकी देखी जा सकती है । कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं- तुलसीदास के समय अद्वैतवादी विद्वान् तत्त्व ज्ञान को ही ईश्वरीय उपासना का प्रमुख साधन मानते थे । दूसरी ओर विशुद्धाद्वैतवादी भक्ति पर बल देते थे ।

उन दोनों मान्यताओं के मध्य समन्वय प्रतिपादित करते हुए कवि ने कहा-

“ ग्यानहिं भगतिहिं नहीं कछु भेदा ।

उभय हरहिं भव-सम्भव खेदा ॥”

इसी प्रकार भक्तियुगीन कवियों की दो धाराएँ - सगुण और निर्गुण के मध्य समन्वय स्थापित करते हुए तुलसी ने बताया कि दोनों ही रूप परम सत्ता के दो पक्ष हैं, तत्त्वतः इन दोनों में कोई भेद नहीं है । उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा-

“ अगुनहिं सगुनहिं नहीं कछु भेदा ।

गावहिं श्रुति, पुरान, बुध वेदा ॥”

तुलसीदास शुद्ध साधना के समर्थक थे । इसमें वह गृहस्थ और संन्यासी में किसी प्रकार के भेद को स्वीकार नहीं करते थे । उनकी दृष्टि में साधक चाहे घर में रहे या वन में, उसके लिए विषय-वासना से विमुखता आवश्यक है-

“ जो जन रूखे विषय-रस चिकने राम - सनेह ।

तुलसी ने प्रिय राम के कानन बसहिं के गेह ॥”

तुलसीदास के समय में शैव और वैष्णव संप्रदाय का वैमनस्य चरम पर पहुँच गया था । शैव सम्प्रदाय शिव को तथा वैष्णव सम्प्रदाय विष्णु की भक्ति को सर्वोपरि मानते थे । रामचरित मानस में विष्णु के अवतार श्रीराम को शिव-भक्त बताकर समन्वय की धारा बहाई, यथा-

“ शिव द्रोही मय दास कहावे ।

ते नर मोहि सपनेहु नहिं भावे ॥”

उन्होंने रामचरित मानस में राजा और प्रजा के कर्तव्यों का निर्धारण करते हुए दोनों के सम्यक् रूप की व्यवस्था की और बताया कि राजा मुख के समान एवं प्रजा कर पद व नयन के समान होती है-

“ सेवक कर पद नयन से,  
मुख सो साहिबु होइ ।”

तुलसी ने अपने आराध्य श्रीराम के व्यक्तित्व में शील और सौन्दर्य का अनोखा समन्वय किया है । जिसमें स्थल स्थल पर राम के अनेक गुणों का बखान किया गया है । जैसे-

“ स्याम गौर किमि कहौं बखानीं ।  
गिरा अनयन नयन बिनु बानी ॥”

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि तुलसी अद्भुत समन्वयकर्ता थे। उन्होंने अपने काल की विभिन्न स्थितियों, प्रचलित परम्पराओं, मतवादों तथा परस्पर विरोधी धार्मिक मान्यताओं के मूल कारणों को खोजकर उनमें समन्वय स्थापित करने प्रयास किया । इसी कारण वे समन्वयवादी भक्त कवि के रूप में प्रसिद्ध हुए ।